जीवन की झलक

हिन्दी ADDA

भुवनेश्वर

जीवन की झलक

बाल पक गए हैं। सामने के दो दाँत निकम्मे हो गए हैं। पर, शरीर पर झुर्रियाँ अभी तक नहीं आई हैं। मेरी उम्र के 65 वर्ष 6 महीने २ दिन बीत चुके हैं, आज तीसरा दिन है। सिर में धीमा-धीमा दर्द हो रहा है। युवावस्था में मैंने काशी के एक ज्योतिषी को अपना हाथ दिखाया था। उसने कहा था - तुम्हारी उम्र 65 वर्ष 6 महीने 3 दिन की है। उसके कथनानुसार आज मेरी जीवन-यात्रा का अन्तिम दिवस है। मुझे भी पूर्ण विश्वास है

कि आज मेरे प्राण पखेरू उड़ जायेंगे। इस माया-महल से आज हमें छुटकारा मिल जाएगा। मैंने संसार देखा और खूब अच्छी तरह देखा। कुछ दिन पहले मैं बड़े आराम से अपनी जिन्दगी बसर करता था। सैकड़ों आदमी हमारे पीछे चला करते थे। बड़े-बड़े लोगों तक मेरी पहुँच थी। सारा शहर मेरी प्रशंसा करता था; परन्तु आज मेरे अभिन्न-हृदय मित्रगण कपूर की तरह न जाने किस हवा में विलीन हो गए। मेरे रिश्तेदार - जो महीने में एक बार मेरे घर अवश्य पधारते थे - इन कई वर्षों से मुझे पहचानते भी नहीं। रास्ते में कहीं मुलाकात होती है, तो वे अपना सिर नीचा कर लेते हैं। कुछ दिन पहले जो मेरी जी-हुजूरी करते थे, आज वे मेरी परछाईं से भागते हैं, परन्तु आज भी मैं आनन्दित हूँ। सांसारिक सुख हमें प्राप्त नहीं होता, तथापि हृदय सदा आह्लादित रहता है। भर पेट अन्न भी मुझे नहीं मिलता; परन्तु मैं बहुत से धनी-मानी लोगों से अधिक सुखी हुँ। मेरे सुख का केन्द्र वही देवी है, जिसकी बाईं जाँघ पर मैं सिर रखकर लेटा हूँ। उसने सुख तथा दुख में साथ दिया है; बल्कि इस दुख की घड़ी में वह पहले से अधिक स्नेह रखती है। वह मेरी धर्मपत्नी है। मेरी शादी हुए 45 वर्ष हो गए। उसने मुझे सदा प्रसन्न रखा, मैं भी सदा इसे प्रसन्न रखने की कोशिश करता था।

आज जब मैं जीवन की अन्तिम साँसें गिन रहा हूँ, अतीत जीवन की बहुत-सी घटनाएँ आँखों के निकट घूम रही हैं। मेरे जीवन की प्रत्येक घटना नए सिरे से फिर एक बार घटित हो रही है। मैं माता-पिता का इकलौता पुत्र था। लाड़-प्यार में पला था। पिताजी ने कभी मुझे डाँटा भी न था। मैं नहीं जानता; पर माँ कहती थी उन्होंने मुझे एक बार दो तमाचे लगाए थे। मैं घंटों रोता रहा था, और जब पिताजी आए उन्होंने माँ को डाँटा, तो मैं चुप हुआ। कुछ दिनों के बाद मैं बाहर पढ़ने के लिए भेजा गया। पढ़ने में भी मैं कुछ खराब न था। बराबर फर्स्ट, सेकेंड होता ही था।

उस समय की एक घटना उल्लेखनीय है। मैंने किशोरावस्था में पदार्पण किया था। हृदय उमंग से भरा रहता था, संसार हरा नजर आता था। इसी समय एक नवकिशोरी से मेरी घनिष्ठता हो गयी। मैं उसे बहुत चाहता था। वह भी मुझे बहुत चाहती थी। मेरे भाव पवित्र थे। मैं किसी वस्तु की प्राप्ति के लिए उसे प्यार नहीं करता था, परन्तु प्यार अवश्य करता था। वह मेरी ही उम्र की थी। बड़ी तीक्ष्ण-बुद्धि थी। शायद उसकी बुद्धि की तीक्ष्णता ही ने मुझे अपनी ओर खींचा था। वह बहुत सुन्दर न थी। मैं आज तक उसे भूल न सका हूँ। मैं नहीं जानता, वह जीवित है या नहीं। मेरी हार्दिक इच्छा है परमात्मा उसे सुखी रखे। धीरे-धीरे हम लोगों का हृदय प्रेम की ओर अग्रसर होने

लगा। अब मुझमें कुछ सोचने की शक्ति आ गयी थी। मैं कभी-कभी सोचा करता यदि हम लोग विवाह-सूत्र में बँध जाएँ, तो हमारा जीवन कितना सुखी हो जाए।

एक दिन की बात भुलाए नहीं भूलती। उस समय का प्रत्येक दृश्य स्पष्ट तथा मेरी आँखों के सामने प्रस्तुत है। हम दोनों अकेले थे। मैं खड़ा था और मेरे सामने वह खड़ी थी। हम लोग दोनों हाथ से पंजा लड़ा रहे थे। बहुत दिनों से हम लोग साथ खेलते थे, परन्तु उस दिन मैंने जैसे ही अपना हाथ उसके हाथों में दिया कि सारे शरीर में विचित्र-सी गुदगुदी होने लगी। नस-नस में एक बिजली-सी दौड़ गई। मैंने अपना हाथ छुड़ा लिया। उसके मुखमण्डल की ओर दृष्टिपात किया, तो देखता हूँ उसके मुख पर फीका गुलाबी रंग चढ़ गया है। मैं इस आकस्मिक परिवर्तन को न समझ सका। उसने युवावस्था में पैर रखा था। उसके विवाह की बातचीत होने लगी। मैं चाहता था उसकी शादी मुझसे ही हो। शायद वह भी मुझसे विवाह करना चाहती होगी; परन्तु न मैंने ही उससे कुछ कहा, न उसी ने कुछ कहा।

प्रेम की अभिव्यक्ति कभी नहीं हुई यह मूक प्रेम था। उसका विवाह हो गया। मुझसे नहीं, दूसरे से। मैं निर्धन था। उसके माता-पिता ने मुझसे विवाह करने की कभी सोची भी नहीं होगी; परन्तु मेरी धर्मपत्नी होकर जितना आन्तरिक सुख उसे होता, वह हम दोनों के सिवा कौन जान सकता था। उसका पति सुन्दर था। मैं समझता था कि वह सुखी होगी। मैं भी उसके सुख में अपने को सुखी समझता था; परन्तु मैं भ्रम में था, वह सुखी नहीं थी - उसके दिन बहुत दुख से कट रहे थे। उसे मानसिक दुख था, शारीरिक नहीं। मेरा विवाह अभी नहीं हुआ था। एक दिन उससे भेंट हुई। उसने कहा - तुम अपना विवाह कर लो। मैं कुछ कह न सका। फिर एक-दो वर्ष व्यतीत हो गये। एक दिन मैं उससे मिलने गया। उसके प्रति अब मेरे भाव निर्मल तथा पवित्र थे। मैंने कभी बुरी भावना से उसकी ओर नहीं देखा। उस दिन उससे बातचीत कर उसकी फुलवाड़ी में चला गया। खाने के लिए कुछ फल खोजने लगा; परन्तु कहीं कुछ नजर न आया।

एक बहुत सुन्दर पका हुआ अमरूद फुनगी में लगा हुआ था। मुझे वृक्ष पर चढ़ना न आता था, तो भी मैं चढ़ा। बहुत कठिनाई से उस अमरूद को तोड़ सका। बस एक ही अमरूद था। मैं तोड़कर उतर गया। मेरे पीछे-पीछे वह भी फुलवाड़ी में चली आई थी। अमरूद तोड़ने में मेरा शरीर भी कुछ छिल गया था। मैंने अमरूद उसके हाथों में दे दिया।

उसने कहा - "भैया, तुम नहीं खाओगे? मैं बिना कुछ कहे वहाँ से बाहर चला गया। कुछ बोलने की शक्ति मुझमें न थी। मेरी छाती फूल रही थी। मैं आनन्द-सागर में

गोते लगा रहा था। सच कहता हूँ, जितना आनन्द मुझे उस समय मिल रहा था, उतना जीवन में कभी न मिला।

आठ-दस साल बीत गए, बीच में उससे कभी मुलाकात नहीं हुई। एक दिन अचानक उसके पति से भेंट हुई। मुझे एक क्लर्क की आवश्यकता थी। पत्रों में मैंने विज्ञापन दे दिया। उसके पति ने भी आवेदन-पत्र भेजा; परन्तु उन्हें मालूम न था कि मैं ही उनका अफसर हूँ। उन्होंने मुझसे कहा - ”मैंने दरख्वास्त दी है, यदि आपसे बन पड़े, तो कुछ कोशिश कर दीजिएगा।’ नियुक्त करने का पूर्ण अधिकार मुझे ही था। मैंने कहा - ”घबराने की आवश्यकता नहीं, आप नियुक्त हो जाएँगे।’ कुछ दिन बाद उनकी पत्नी भी आ गईं। उसने एक दिन मुझे भेंट करने के लिए बुलाया था। वह मेरे पाँव पकड़कर रोने लगी। उसने कहा - ”भैया, इनकी नौकरी आप ही के हाथ में है, मेहरबानी रखिएगा।’

मैंने उसे सान्त्वना दी। वह बहुत दुबली हो गयी थी। इस भीषण परिवर्तन को देख, मैं बहुत दुखी हुआ। मैंने उसके पति की उन्नति के लिए बहुत कोशिश की, और उन्हें हेड क्लर्क बना दिया। आज वे कहाँ हैं, क्या करते हैं, नहीं मालूम। परमात्मा उनकी रक्षा करे।

किशोरावस्था की यह घटना आज भी कभी-कभी मेरी सूखी नसों में मन्दाकिनी की धारा प्रवाहित कर देती है। हृदय में एक विचित्र हिलोर पैदा हो उठती है। वे कैसे स्वर्गीय सुख के दिन थे! इस दृश्य के समाप्त होते ही विवाह की फिल्म आँखों के सामने आती है। प्रेम का साइलेंट फिल्म टॉकी में परिवर्तित हो गया। यह दृश्य भी कितना मनोहर तथासुखद है। नवोढ़ा पत्नी का प्रेम कितना ही मधुर तथा मतवाला होता है। पत्नी तथा पति के सिवा संसार में कुछ दिखलाई नहीं पड़ता। वियोगावस्था कैसी भीषण होती है! गृहस्थाश्रम का प्रथम परिच्छेद भी कैसा मजेदार होता है! जीवन में एक नए आनन्द का संचार हो जाता है। मनुष्य सुख की धारा में निमग्न हो जाता है। मेरी इस पत्नी की षोडशी कला क्या भुलाए भूल सकती है? वह मानचित्र मेरे हृदय-पट पर एक अमिट रोशनाई से अंकित हो गयी है। उस समय मैं बी.ए. में पढ़ता था। मेरे श्वसुरजी अपने लड़की के लिए दूल्हे की खोज में परेशान थे। जब तक युवती पुत्री की शादी नहीं होती, तब तक माता-पिता चैन नहीं पाते। एक दिन श्वसुरजी ने मुझसे ही पूछा - ’आपकी नजर में कहीं अच्छा लड़का है?’

मैं युवावस्था में पदार्पण कर रहा था। मुझे भी एक मजाक सूझा। मैंने कहा - 'मुझसे अच्छा लड़का और कहाँ मिलेगा।' मैं सचमुच उनकी नजर में गड़ गया। आखिर हजार कोशिश कर उन्होंने मुझे दामाद बना लिया।

मेरी शादी हो गई। सिन्दूर दान के समय जब मैंने अपनी पत्नी के सिर का स्पर्श किया, तब मेरे हृदय में यही भाव उत्पन्न हो रहे थे कि आज से यह मेरी है। मैं प्रसन्न था। मैंने जैसे ही सिन्दूर भरा हाथ उसके मस्तक पर रखा कि रिमझिम-रिमझिम झींसी पड़ने लगी। लोगों ने कहा - 'देवतागण वर-वधू को अशीर्वाद दे रहे हैं।"

बी.ए. पास करने के पश्चात् मैं एक ऊँचे पद पर नियुक्त हुआ। 20 वर्ष तक मैंने खूब आनन्द से अपने दिन बिताए। मुझे पाँच सौ रुपये मासिक मिलते थे। मेरी पत्नी पतिव्रता तथा सुशीला थी। उस समय की कोई भी घटना मेरा ध्यान आकर्षित नहीं करती; परन्तु रमेश की याद, आह! हृदय को तिलमिला देती है। उसके इस गौर-वर्ण-कलेवर, और उसके ऊँचे ललाट तथा चौड़ी छाती पर तो दूसरे की आँखें ठहर जाती थीं, फिर भला मुझ अभागे को उसकी याद क्यों न पीड़ा पहुँचाएगी! रमेश मेरा पुत्र था। वह इस पाप-पूर्ण संसार में रहने योग्य न था; इसलिए देवताओं ने उसे अपने निकट बुला लिया। परमात्मा ने 23 वर्ष के नौजवान पुत्र को मेरी गोद से छीन लिया। रमेश का भविष्य बड़ा उज्ज्वल था। वह अपने जीवन में कभी सेकेंड हुआ ही नहीं। बी.ए. इंगलिश ऑनर्स में तथा एम.ए. में वह फर्स्ट क्लास हुआ था। आई.सी.एस. के लिए वह इंग्लैण्ड गया। परीक्षा समाप्त होने के बाद उसने मुझे लिखा था कि यूरप की सैर करने के बाद मैं भारत के लिए रवाना होऊँगा। वह रवाना हो चुका था। उसकी माता उसके आने की बाट बड़ी उत्सुकता से देख रही थी। एक दिन अचानक एक पत्र आया, रमेश का ही लिखा मालुम होता था। खोलकर देखा, तो बदन काठ हो गया। रमेश ने जहाज पर से लिखा था -

'पूज्य पिताजी तथा माताजी,

आपके चरणों के दर्शन की उत्कट अभिलाषा मेरे हृदय में थी; परन्तु ईश्वर को यह मंजूर न था। मैं जीवन की अन्तिम साँसें गिन रहा हूँ। मेरे अपराधों को क्षमा करेंगे। माताजी! ईश्वर की यही मरजी थी, किसी का क्या चारा है।

आपका प्रिय पुत्र

रमेश

इस लिफाफे में एक और भी पत्र था। जहाज के कप्तान ने लिखा था - इस पत्र के लिखने के बाद ही रमेश चल बसा।

यह हृदय-विदारक पत्र पढ़ ही रहा था Telegraph messenger तार लिये हुए पहुँचा। तार में लिखा था - Congratulation Ramesh, you get the first position in the I.C.S. इन पत्रों को पढ़कर मैं खड़ा न रह सका। जमीन पर बेसुध होकर गिर पड़ा। इस घटना के बाद रमेश की माँ तो कुछ पगली-सी ही गयी, और मेरी भी बुद्धि ठीक नहीं रहने लगी। एक दिन आफिस के काम में कुछ गड़बड़ी हो गयी और मुझे इस्तीफा दे देना पड़ा। रमेश की माँ अब अच्छी हो गई है। मैंने बंगला छोड़ दिया तथा शहर के किनारे एक कोठरी ले ली है, जिसमें अपनी धर्मपत्नी के साथ पिछले दस वर्षों से रहता हूँ। रुपये-पैसे पास में नहीं हैं। मैंने जो भी कमाया, सभी गरीबों के पीछे खर्च कर दिया था। युवावस्था में मुझे लिखने का एक व्यसन-सा हो गया था। उन्हीं पुराने लेखों को मेरी धर्मपत्नी पत्रों में भेज दिया करती हैं। इससे जो कुछ मिलता है, उसी में गुजारा करना पड़ता है। मेरी धर्मपत्नी को पुत्र वियोग से बड़ा दुख हुआ। उसका हृदय टूट गया है। आह! मुझे खूब याद है, शादी के एक वर्ष बाद ही एक दिन मेरी पत्नी किसी के बच्चे को गोद में लिये मेरे निकट आई तथा कहने लगी - 'मेरे भी एक ऐसा ही सुन्दर बालक होता, तो कितना अच्छा होता!' उसके ये शब्द मेरे हृदय पर आज वज्र की तरह प्रहार करते हैं। परमात्मा ने उसे सर्वगुण-सम्पन्न बालक दिया था; परन्तु छीन लेने के लिए। मरते समय एक बात और भी याद आती है। हमारे दो साले हैं, दोनों ने खूब उन्नति की है। छोटा साला हाईकोर्ट में जज है। मुझे कहते भी डर लगता है। भला गरीब आदमी भी जज का बहनोई होता है। दूसरा साला पुलिस का एडिशनल सुपरिन्टेंडेंट है। एक दिन की बात खूब अच्छी तरह याद है। पत्नी ने कहा था–'अवधेश को लड़का होने वाला है, जरा दरियाफत कर आइये।' मैं, गरीब, जाने में हिचकता था। परन्तु फिर भी सीधा जज साहब की कोठी के अन्दर चला गया।

उस दिन बड़े-बड़े आदमियों की पार्टी थी। कई अंग्रेज भी आए थे। अवधेश उन्हीं के बीच बैठा था। मुझे आते देख उसने सिर झुका लिया। Mr. Justice Stout ने कहा - 'Who is this nasty old fellow in rags? (यह गुदड़ी लपेटे कौन मौजूद है?)

जस्टिस सिन्हा ने कहा - Might be some beggar. (कोई भिखमंगा होगा) कहते हुए मुझसे कहा - अभी जाओ, दूसरी रोज आना।

मैं अपना-सा मुँह लिये लौट पड़ा। बाहर आने पर मालूम हुआ कि जज साहब को पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ है। और उसी की खुशी में आज पार्टी दी गयी है। मैं चला जा रहा

था कि कोठे पर से किसी ने पुकारा - अजी ओ मियाँ, जरा इधर कोठे पर भी मेहरबानी कीजिए।

मैंने आँखें उठाईं, तो देखा कि जज साहब की बीबी कोठे पर खड़ी मुझे पुकार रही हैं। मैंने कहा - साहब ने दूसरे दिन बुलाया है, अभी जाता हूँ। - इतना कहकर मैं चलने लगा कि दाई ने आकर कहा - मेमसाहब आपको बुलाती हैं।

मैंने कहा - मैं लाचार हूँ और मेमसाहब की ओर घूमकर देखा। उनकी आँखों में बेबसी के चिन्ह दिखाई पड़ते थे। घर जाकर सब समाचार पत्नी को कह सुनाया। अपने छोटे भाई के आचरण पर उसे बहुत दुख हुआ।

पतिदेव मेरी जाँघ पर सिर रखे उपर्युक्त बातें बोल रहे थे, मैं लिख रही थी। जब किसी पत्र के लिए उन्हें कुछ लिखना होता है, तो वे इसी तरह बोलते जाते हैं और मैं लिखती जाती हूँ। उपर्युक्त बातें कहने के पश्चात उनके शरीर में कुछ बेचैनी मालूम पड़ने लगी। उन्होंने मुझे सम्बोधन करके कहा - प्रिये! अब मेरी मृत्यु की घड़ी नजदीक आ गयी है। अब मुझे तुमसे ही कुछ कहना है। मैं तो जा ही रहा हूँ; परन्तु तुम्हारे भविष्य का ध्यान कर चिन्तित हो जाता हूँ। तुम इस संसार में अकेली कैसे रहोगी? तुम अपने भाई के निकट चली जाना। प्रियतमे, मैं अपने जीवन की सारी घटनाओं को सरसरी निगाह से देख गया। मैंने कोई बुरा कर्म नहीं किया है। मैं सदा निष्कलंक रहा। मुझे इसकी बड़ी प्रसन्नता है। मैं मृत्यु का आलिंगन करने के लिए प्रस्तुत हूँ; परन्तु बस तुम्हारी चिन्ता मुझे दुखी कर देती है। विवाह के पश्चात् इन 45 वर्षों तक तुमने मेरी अथक सेवा की। तुम्हारे बिना मैं कई वर्ष पहले ही स्वर्गधाम को सिधार गया होता; परन्तु तुम्हारी सेवा-सुश्रूषा ने मुझे बहुत दिनों तक बचाया।

प्रिये! जब मैं कॉलेज में पढ़ता था, उस समय मेरे एक मित्र कहा करते थे कि पवित्र प्रेम अथवा निःस्वार्थ प्रेम नाम की कोई चीज संसार में है ही नहीं। हम लोगों में प्रायः इस विषय पर बहस होती थी; परन्तु किसी ने कभी हार न मानी। मेरे प्रति तुम्हारा जो प्रेम रहा, उसमें तो स्वार्थ की बू तक नहीं आती। इस कलिकाल में तुम्हारी-सी पतिव्रता स्त्री भी मैंने कहीं न देखी। तुम्हें पत्नी-रूप में पाकर मैं अपने को धन्य समझता हूँ। तुम सचमुच कोई अभिशप्त देवी हो। तुमसे बिछुड़ते हुए मुझे बहुत दुख होता है; परन्तु कोई चारा नहीं है। मैंने तुम्हें बहुत दुख दिया है। क्षमा करना देवी!

पतिदेव इस तरह बोल रहे थे और मेरी आँखों से आँसुओं की अविरल धारा बह रही थी। भला कौन ऐसी कठोर-हृदया स्त्री होगी, जो ऐसे समय में स्थिर रह सके। मेरा सौभाग्य-सूर्य अस्ताचल की ओर अग्रसर हो रहा था। मेरे प्राणों से प्यारे पतिदेव

मुझसे विलग हो रहे थे। मेरा सौभाग्य-सिन्दूर मिट रहा था। मेरी जीवन-नौका के कर्णधार चले जा रहे थे, तो भला मुझे शान्ति कहाँ। मैं सिसक रही थी। इसी समय मेरा भाई जो पुलिस में काम करता है, आता हुआ दिखलाई पड़ा। उसके साथ अवधेश का लड़का भी था। इन लोगों ने कोठरी में आकर मुझे प्रणाम किया। मैं इन्हें देख अपने को रोक न सकी, फूट-फूटकर रोने लगी।

मैंने कहा - भैया गणेश, आज बहुत दिन पर आए! मेरा सौभाग्य-सिन्दूर मिट रहा है, किसी प्रकार मेर डूबती किश्ती को बचा लो। गणेश ने मेरे पतिदेव की ओर देखते हुए पूछा - भाई साहब, कैसी हालत है?

पतिदेव ने मस्कुराते हुए कहा - गणेश! मृत्युकाल में तुमसे भेंट हो गयी, मैं बहुत प्रसन्न हूँ। यह मेरी अन्तिम घड़ी है। डॉक्टर बुलाना व्यर्थ है। कहो, अकेले आए हो, या सपरिवार?

गणेश - सपरिवार ही आया हूँ। मेरे साथ बड़ी दीदी भी आई हैं।

पतिदेव - बहुत खुशी हुई। क्या तुम बड़ी दीदी को यहाँ ला सकते हो? उनका दर्शन कर मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। लड़कों को मत लाना। सब व्यर्थ का शोर मचा डालेंगे। (अवधेश के लड़के की ओर देखते हुए) बेटा जगत, तुम घर जाओ, मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ। परमात्मा तुम्हें सुखी रखें। जाओ अपनी माता तथा चाची से कह देना कि फूफा ने मरती बेर तुम लोगों को याद किया था। अपनी बड़ी बुआ को जल्द भेज देना। जाओ, देखते क्या हो?

इतना सुन बालक जगत रोता हुआ चला गया। बालक-हृदय कितना कोमल होता है - कौन समझ सकता है। थोड़ी देर में मेरी बड़ी दीदी भी पहुँच गयी। यह सब हाल सुनकर वह घबरा गई थीं। वह पतिदेव के सिरहाने जाकर खड़ी हो गईं। उन्होंने हाथ बढ़ा चरणों की धूलि अपने माथे पर लगाते हुए कहा - दीदीजी, मेरा पुण्य कर्म प्रबल था, जो आपसे भेंट हो गयी। मुझे तो उम्मीद न थी। बस, जरा उसे देखिएगा।

दीदी - ऐसा क्यों कहते हैं, आप अच्छे हो जाएँगे।

पति - यह व्यर्थ की सान्त्वना है। मेरा बचना असंभव समझिये।

'गणेश कहाँ गए?'

गणेश - कहिए, मैं हाजिर हूँ।

पति - भैया गणेश, अब तो मैं जा रहा हूँ। तुमसे मेरी एक प्रार्थना है - मैंने तुम्हारे दिल पर चोट पहुँचाई है, क्षमा करना। अपनी बहन को देखना। इस दुखिया के तुम्हीं लोग एकमात्र सहारे हो। मैं नहीं समझता, तुम लोग मुझसे क्यों नाराज हो। जो कुछ भी हो, मैं क्षमा चाहता हूँ। जो मृत्यु की गोद में जा रहा है, उससे कैसा वैमनस्य? छी:! तुम रोते हो। कायर क्यों बन रहे हो - धीरज धरो।

गणेश - मैं पापी हूँ। मेरी असावधानी के कारण ही आज आपक ऐसी दशा है। मैं इस लायक भी नहीं रहा कि आपसे क्षमा माँग सकूँ। भला, जो अपने आदमियों की खबर न ले, वह भी क्या मनुष्य है?

पति - नहीं, गणेश, यह सब कर्मों का फल है। यदि तुम्हारा कुछ दोष भी था, तो वह पश्चाताप की अग्नि से उज्ज्वल हो गया।

मैं गणेश के बगल ही में खड़ी थी। मेरी ओर नजर पड़ते ही वह कहने लगा - सुधा! तुम्हें देखकर मैं स्थिर नहीं रह सकता। मेरे हृदय के बाँध टूट जाते हैं। मेरे बिना तुम एक उखड़ी हुई लता की भाँति हो जाओगी। जाने दो, मृत्यु के समय अधिक चिन्ता की क्या आवश्यकता। तुम्हें शान्त करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। लो, मैं चला। (हाथ जोड़कर) आशा है, आप लोग सभी मुझे क्षमा करेंगे। यह कहते हुए उन्होंने सबको अभिवादन किया और आँखें मूँद लीं। इसके पश्चात् दो हिचकियाँ आईं और उनके प्राण-पखेरू उड़ गए। मैं उनकी लाश पर धड़ाम से गिर पड़ी और मूर्च्छित हो गई। उस समय मुझे कुछ सूझ ही न पड़ता था। आज मैं सोचती हूँ, तो एक बात याद आती है। वे प्राय: इस शेर को पढ़ा करते थे -

‘दो ही हिचकी में हुआ बीमारेगम का फैसला।

एक हिचकी मौत की थी, एक तुम्हारी याद की।’

शायद मेरे पतिदेव को भी ‘एक हिचकी मौत की थी, एक तुम्हारी याद की।’ मुझे देव-तुल्य पति मिले थे। मैं अगले जन्म में भी उसी देव की किंकरी बनने की इच्छा करती हूँ। उनकी मृत्यु हुए एक साल हो गया। उन्होंने कहा था - मेरे अन्तिम उद्‌गारों को किसी पत्र में छपवा देना। उन्हीं के कथनानुसार मैं इस लेख को भेज रही हूँ। पतिदेव की मृत्यु के पश्चात् मैं अपने भाई के ही साथ रहती थी; परन्तु मेरा दिल वहाँ नहीं लगता था। पति-गृह ही स्त्रियों का वास-स्थान है। कुछ दिनों के पश्चात् मैं उसी तीर्थ स्थान को चली आई। उसी कोठरी में, जहाँ मैंने दुख के 10 वर्ष बिताए थे। वहीं अपने जीवन की शेष घड़ियाँ बिताने की ठान ली है। मैं अब संन्यासिनी का-सा जीवन

व्यतीत करती हूँ तथा पतिदेव की पूजा किया करती हूँ। मुझे भी इस संसार में अधिक दिन नहीं रहना है। जब ईश्वर ही चला गया, तो उसके पुजारी के रहने की क्या आवश्यकता है।

(हंस, ई. 1935)